Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

भील जनजाति और स्वतंत्रता संघर्ष

कमलेश कुमार नाथ*

* एम.ए., नेट (जेआरफ) (इतिहास) हरणी महादेव रोड नया समेलिया, भीलवाड़ा (राज.) भारत

प्रस्तावना – भील राजपूताना की एक प्राचीन जनजाति हैं। राजस्थान में मीणा जनजाति के बाद जनसंख्या में भीलों का स्थान है। भीलों के बारे में मान्यता है कि आर्यों ने जब यहां के मूल निवासियों पर आक्रमण किया तब जिन लोगों ने आर्यों की अधीनता स्वीकार की वो दस्यु या शुद्र कहलाए तथा जो लोग आर्यों के सामने टिक नहीं पाए और जंगलों में चले गए वे आदिवासी कहलाए। भील जनजाति भी उन्ही में से एक थी । कर्नल जेम्स टॉड भीलों को वनपुत्र कहते हैं। भीलों का लिखित रूप में सर्वप्रथम उल्लेख महाकाव्यों में मिलता है। मसलन रामायण में राम ने शबरी के जूठे बेर खाए थे। शबरी को भील जनजाति का माना गया हैं। इसी प्रकार महाभारत में एकलव्य का उल्लेख मिलता है,जिसे निम्न जाति का होने के कारण द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या सिखाने से मना कर दिया था। भील जनजाति भारत में गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान इत्यादि राज्यों में पाई जाती हैं। राजस्थान में मुख्य रूप से यह जनजाति उदयपुर,डूंगरपुर, बांसवाड़ा, सिरोही, भीलवाड़ा तथा चित्तौड़गढ़ में पाई जाती है। स्वभाव से भील स्वतंत्र प्रकृति के होते है।अपने स्वामी के प्रति वफादारी इनका मुख्य गुण है। ये अपनी परंपराओं में किसी भी बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करते ।

राजस्थान में भीलों का मेवाड़ राजघराने से विशेष संबंध रहा है। जब – जब भी मेवाड़ पर संकट आया, भीलों ने मेवाड़ राजघराने की मदद की । भीलों ने राणा मोकल, राणा कुम्भा, राणा सांगा व राणा प्रताप इत्यादि शासकों की सहायता की थी। महाराणा प्रताप के समय में मुगलों से स्वतंत्रता संघर्ष में भीलों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। हल्दी घाटी में मेरपुर का भील राणा पूंजा अपने विश्वस्त धनुर्धारी भीलों के साथ सम्मिलित हुआ था। प्रताप ने अपनी सेना के पृष्ठ भाग का दायित्व राणा पूंजा के नेतृत्व में भीलों को सौंपा था । प्रताप की सेना में भीलों की नियुक्ति का असर शाही सेना पर भी पड़ा जिसके कारण मुगल सेना आगे की ओर नहीं बढ़ सकी। उसे डर था कि कहीं भील घात लगाकर हमला न कर दें।[1] भीलों की सेना के कारण ही मानसिंह, राणा प्रताप को पकड़ने में असफल रहा था। मुगलों के मन में भील धनुर्धारियों का भय बैठ गया था। जब तक राणा प्रताप मुगलों से संघर्ष करते रहे तब तक भीलों ने प्रताप का साथ दिया। भीलों के सहयोग की बदोलत ही प्रताप अपने राज्य का अधिकांश क्षेत्र पुन: विजित कर पाए। प्रताप के बाद के शासकों के साथ भी भीलों ने सोहद्रपूर्ण संबंध बनाए रखे । ओरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य कमजोर हो गया। केंद्रीय नियंत्रण के अभाव व राज्यों की आंतरिक कलह का लाभ उठाकर मराठों ने राजपूत रियासतों में भयंकर लूटपाट की । यहां के शासकों ने मराठों से निजात पाने के लिए अंग्रेजो से सहायक संधियां की । अंग्रेजो ने देशी राजाओं से संधियां करने के बाद देशी राज्यों के राजस्व में वृद्धि करने के लिए भीलों के अधिकारों का हनन करना शुरू कर दिया।भील एक घुमंतू जनजाति थी । प्रारंभ में ये भोजन की तलाश में इधर–उधर भटकते रहते थे। बाद ने इन्होंने जंगलों को जलाकर खेती करना शुरू कर दिया था। ये अपने क्षेत्र में सुरक्षित यात्रा के बदले यात्रियों से बोलाई नामक कर प्राप्त करते थे तथा गांव की सुरक्षा के बदले रखवाली नामक कर प्राप्त करते थे। अकाल के दिनों में इन्होंने चोरी–डकैती का पेशा भी अपना लिया था।[2] जब इस्ट इंडिया कंपनी ने इनके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया तो भीलों ने अंग्रजों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया।भील एक शांतिप्रिय जनजाति थी।किंतु ब्रिटिश सरकार द्वारा उनके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के कारण उसने हिंसा का मार्ग अपनाना शुरू कर दिया था। अत: ब्रिटिश सरकार ने इन पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए 1841में मेवाड़ भील कोर की स्थापना की। ये एक रूढ़िवादी जनजाति थी और किसी भी प्रकार का परिवर्तन स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। 1881 में मेवाड़ सरकार ने भीलों में कुछ सामाजिक और प्रशासनिक सुधार लागू करने चाहे। मसलन भीलों की जनगणना करना, भीलों के क्षेत्र में पुलिस चौकी स्थापित करना, शराब पर प्रतिबंध लगाना इत्यादि। भीलों को जब इन सुधारों के बारे में जानकारी मिली तो उन्होंने पुन: विद्रोह कर दिया। अंत में कविराज शयमलदास के प्रयासों से यह विद्रोह शांत हुआ।

भीलों में अनेक सामाजिक कुरुतिया फैली हुई थी। ये विभिन्न प्रकार की रूढ़ियों में विश्वास करते थे। इन रूढ़ियों और धार्मिक अंधविश्वासो के विरुद्ध गोविंद गुरु ने आवाज उठाई। गोविंद गिरी ने बेडसा गांव में धूनी स्थापित की ओर ध्वज लगाकर आध्यात्मिक शिक्षा देना शुरू किया।[3] गोविंद गुरु के खुद के शब्दों में उनकी मुख्य शिक्षाएं इस प्रकार की थी। उस समय में निर्धन विनम्र और जंगली भीलों के मध्य रहता था। जिन्हे सृष्टिकर्ता का कोई ज्ञान नहीं था। जो मेरी झोपडी पर आते थे, उन्हें में सवर्णों की तरह आचरण करने की सलाह देता था, मेने उन्हें सत्य और धर्म का रास्ता दिखाया और उन्हें भगवान की पूजा करने चोरी न करने ,धोखा न देने,दूसरो के साथ शत्रुता न रखने बल्कि समान पिता की संतान मानकर सबका आदर करने और सभी के साथ शांतिपूर्वक रहने,कृषि कार्य करने,वीर वंत रा, भोपा इत्यादि में विश्वास न करने की शिक्षा दी।[3]

गोविंद गुरु के इन विचारों ने सामाजिक जागृति के साथ साथ भीलों में राजनीतिक चेतना भी जागृत कर दी। अब भील अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने लगे और अपने ऊपर किए जा रहे अत्याचारों का विरोध करने लगे डॉ. ब्रज किशोर शर्मा के अनुसार भारी राजस्व वसूली, वेठ बेगार,

अंग्रेजो की वन नीति,दोषपूर्ण आबकारी नीति के कारण विद्रोह किया था।[4]

गोविंद गुरु के प्रयासों से राजपूताना के दक्षिण भाग के पहाड़ी इलाकों के पूरी तरह संगठित हो गए थे। गोविंद गिरी की लोकप्रियता को देखते हुए डूंगरपुर राज्य के जागीरदारों व अधिकारियों ने गोविंद गिरी को उनका भू भाग छोड़ने पर मजबूर किया। 1908 में गोविंद गिरी बेड़सा गांव छोड़कर सुथ में कार्य करने लगे। 1911में अपने मूल राज्य बेदशा में पुन लोटे और अपनी शिक्षा का प्रचार प्रसार करने लगे । 1913 में डूंगरपुर पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। कुछ समय बाद रिहा करके डूंगरपुर छोड़ने का आदेश दे दिया। गोविंद गुरु अपने साथियों सहित भानगढ़ चले गए। गोविंद गुरु ने सभी भीलों को भानगढ़ में इकट्ठा होने का संदेश दिया। 1913 में सभी भानगढ़ पर इकट्ठा हो गए। इन इकट्ठा हुए भीलों पर अंग्रेजो ने बिना किसी चेतावनी के अंधाधुंध गोलियां चला दी जिसमे हजारों की संख्या में भील मारे गए। इसके बाद गोविंद गुरु को गिरफ्तार करके कैद खाने में डाल दिया गया इस तरह गोविंद गुरु के आंदोलन का अंत हो गया।

ब्रिटिश सरकार द्वारा गोविंद गिरी के आंदोलन को कुचलने के बाद कुछ समय के लिए भील शांत हो गए और अंग्रेजो द्वारा उनको रियायते भी दी गई। किंतु कुछ समय बाद पुन: भीलों पर अत्याचार शुरू हो गए। गोविंद गिरी का आंदोलन डूंगरपुर बांसवाड़ा सूथ ईडर तक सीमित था। उदयपुर वह सिरोही इस से अछूत रहे थे दूसरी ओर अंग्रेजो द्वारा किए गए सुधारों से भी भील संतुष्ट नही थे। मई 1917 में पहाड़ा के भीलों ने बेगार ,अधिक राजस्व वसूली व अवैध लाग बागो को समाप्त करने की मांग की । नवंबर 1918में भीलों की कुछ मांग स्वीकार कर ली गई किंतु उनसे भील संतुष्ट नहीं हुए। पहाड़ा के भीलों ने भू राजस्व व अवैध लाग बाग के भुगतान को रोक दिया और बेगार करने से इंकार कर दिया। 1921तक झाड़ोल, कोल्यारी, मादरी, मांगरा ओर मेवाड़ के भी राज्य व जागीरदारों की सत्ता को खुली चुनौती दे दी।[5]

1921 में मोतीलाल तेजावत भीलों के मसीहा के रूप में उभरकर सामने आए। इन्होंने भीलों की दुर्दशा को देखा और भीलों में चेतना जगाने का निर्णय लिया। 1921में मातृकुडिया में सभी किसानों की एक बैठक हुई इस बैठक में किसानों ने लगान न देने की कसम खाई और कहा जो किसान तथा पटेल लगान भरेगा उसे एकलिंग जी पूजेंगे। मेवाड़ के अधिकारियों को इस बात का पता चला ,वे उन्हें डराने धमकाने लगे कहने लगे राज है,मालिक है, मार देवे रोवा नही देवे, भीलों पर अधिकारियों की इन धमकियों का भी कोई असर नहीं पड़ा। सभी किसानों ने अपनी शिकायतों को लेकर एक मेवाड़ की पुकार नामक शीर्षक से किताब तैयार की । जिसमे 21मांगे थी । यह पुस्तक तत्कालीन महाराणा फतेह सिंह के पास पहुंचा दी गई जिसमे से 18 मांगे तो स्वीकार कर ली गई किंतु जंगल से लकड़ी व चारा काटने और सुअर को मारने कि मांग मेवाड़ के पंचों पर छोड़ दी। महाराणा के इस निर्णय से किसान तो खुश हो गए किंतु भील नहीं हुए अत उन्होंने आंदोलन जारी रखा । मोतीलाल तेजावत ने भीलों में चेतना पैदा की ओर कहा भूमि के असली मालिक वो हैं। मोतीलाल द्वारा की जा रही गतिविधियों से चिंतित होकर झाड़ोल के ठाकुर ने उसे गिरफ्तार कर लिया था किंतु भीलों की भारी भीड़ को देखकर उसे पुन छोड़ना पड़ा। इसके बाद यह आंदोलन और तेजी से चला । यह आंदोलन केवल उदयपुर तक सीमित नहीं रहा इन्होंने इसका प्रचार प्रसार सिरोही में भी किया । इस समय सिरोही के दीवान मदन मोहन मालवीय के पुत्र थे रमाकांत मालवीय थे। इन्होंने आदिवासी आंदोलन को नियंत्रित करने का प्रयास किया था। गांधी जी से रमाकांत ने सहायता लेने का प्रयास किया । गांधी जी ने मणि लाल कोठारी को सिरोही भेजा था मोतीलाल तेजावत की गतिविधियों की जांच के लिए । मणि लाल ने अपनी रिपोर्ट में मोतीलाल के सामाजिक सुधारो के बारे में जिक्र किया था। इस से पूर्व मोतीलाल ने भील आंदोलन को गांधी जी से जोड़ा था । गांधी जी ने अपने समाचार पत्र में लेख लिखकर इसका। खंडन किया था और कहा था की मेरा कोई शिष्य नहीं है मेरा कांग्रेस और खिलाफत कमेटी का अलावा किसी से कोई संबंध नही है।

भीलों के आंदोलन को देखते हुए ब्रिटिश अधिकारियों ने भीलों के बीच समझौते के प्रयत्न चल रहे थे।[6] विजय नगर रियासत के पाल छितरिया गांव में इन रियासतो के सरकारी प्रतिनिधियो ओर आदिवासी जनता के मध्य 7 मार्च 1922 को लगान बेगार पर बातचीत चल रही थी। यहां पर उपस्थित भील कोर रेजीमेंट ने बिना किसी कारण भीलों पर गोलियां चला दी जिसमे 1200 भील मारे गए। इसमें खुद मोतीलाल घायल हो गए थे। इस घटना के कुछ समय बाद अंग्रेजों ने सिरोही में रक्तपात किया और मई 1922 को रियासत की सैनिक टुकड़ी ने सिरोही की रोहेंदा तहसील को घेरकर अधाधुंध गोलियां चला दी। इसमें आदिवासियों को जन व धन कि भारी हानि हुई। राजस्थान सेवा संघ ने इसकी जांच करवाई और इस मामले को ब्रिटिश संसद में भी उठाया । 1922 से 1929 तक मोतीलाल भूमिगत रहे । 1929 में उनकी गिरफ्तारी के साथ ही यह आंदोलन समाप्त हो गया।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भील जनजाति ने प्रारंभ में निजी हितों को आधार बनाकर विद्रोह किया था किंतु समय के साथ इस विद्रोह ने राजनीतिक रूप धारण कर लिया। भील आंदोलन के नेताओ ने भीलों को आपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया। स्वाभिमान, आत्म चेतना, नैतिकता, इत्यादि इस आंदोलन के मूल तत्व थे।ईसाई, मिशनरियों के प्रचार, अंग्रेजो की वन नीति विभिन्न प्रकार की लाग बाग आदि से तंग होकर भील विद्रोही हो गए थे। गोरतलब है कि भील जनजाति के लोगो ने पहले अपने जीवन में बदलाव किया और देवत्त्व का सहारा लिया ताकि इनकी क्रांतिकारी गतिविधियों को नैतिक समर्थन मिल सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. देव कोठारी, ललित पांडेय ,स्वतंत्रता आंदोलन में मेवाड़ का योगदान, साहित्य संस्थान विद्यापीठ, उदयपुर 1991 पृ.सं.70
2. शर्मा व्यास,राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण 2016 पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. सं. 523
3. ब्रज किशोर शर्मा,राजस्थान में किसान और आदिवासी आंदोलन, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर पृ.सं. 79
4. पूर्व उद्धृत वही पृ. सं. 82
5. पूर्व उद्धृत वही पृ. सं. 105
6. पूर्व उद्धृत वही पृ. सं. 78
7. प्रेम सिंह काकरिया, भील क्रांति का प्रणेता मोतीलाल तेजावत, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, पृ सं.50

****